* ओ३म् *

पौराणिक आचार्यों की दृष्टि में साकारवाद

शास्त्रार्थ महारथी पं० ओमप्रकाश शास्त्री
विद्याभास्कर

१९७५] [मूल्य १ रुपया

Scanned by CamScanner

॥ ओ३म् ॥

पौराणिक आचार्यों की दृष्टि में साकारवाद

आर्यसमाज भवन
उत्तरकाशी
नंबर ...393.....

लेखक

शास्त्रार्थ महारथी पं० ओम्प्रकाश शास्त्री विद्याभास्कर

खतौली

जिला—मुजफ्फर नगर

प्रकाशक

आर्य-समाज लल्लापुरा

वाराणसी

Scanned by CamScanner

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण—मार्च १९७५ ई०

फाल्गुन कृष्ण १४ बोधरात्रि वि० सं० २०३१

सृष्टि संवत्—१९७२९४९०७५ दयानन्दाब्द १५०

मुद्रक—

प्रभात प्रेस

गोला दीनानाथ, वाराणसी ।

Scanned by CamScanner

॥ ओ३म् ॥

प्रकाशकीय

महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित 'आर्य समाज. अपने जन्मकाल १८७५ ई० से ही वैदिक धर्म का अधिकाधिक प्रचार-प्रवचन, व्याख्यान, शङ्का-समाधान तथा शास्त्रार्थ के माध्यम से किया साथ ही सुयोग्य आर्य विद्वानों एवं लेखकों ने वैदिक मान्यताओं की पुष्टि में बहुत बड़ी संख्या में ग्रन्थों की रचना की। जिससे समाज के बहुत बड़े वर्ग में आर्य सिद्धान्तों का प्रबल प्रचार हुआ। वैदिक ग्रन्थों की रचना एक ठोस कार्य है। इससे जहाँ वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार स्थायी रुप में होता है वहाँ वेदादि सच्छास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन की सुन्दर परम्परा भी विकसित होती है। आर्य साहित्य के अधिकाधिक प्रचार से समाज में फैले हुए 'अज्ञान' के उन्मूलन में सहायता मिलती है। इस तथ्य को ऋषि ने पूर्व ही समझ लिया था। अतः ऋषिवर अपने जीवन के अन्तिम दस वर्षों में-जबकि वे हजारों मील पैदल तथा रेलयात्रा, असंख्य प्रवचन व व्याख्यान, सहस्राधिक शास्त्रार्थ तथा अनेकानेक पत्र लेखन में व्यस्त रहे थे, तब भी सत्यार्थ प्रकाश:, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका एवं संस्कार विधिः जैसे महत्त्वपूर्ण वृहद् पुस्तकों को मिलाकर करीब '५० ग्रन्थों की रचना की। वैदिक सूर्य के प्रकाशनार्थ कृत संकल्प महर्षि दयानन्द अपने जीवन की सान्ध्य वेला में सम्पूर्ण वेद भाष्य करने में कितने व्यग्र थे, इनका पता हमें उनके लिखें पत्रों से मिलता है। (द्र० महर्षि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन)

Scanned by CamScanner

ऋषि दयानन्द के पश्चात् आर्य समाज के प्रारम्भिक विद्वानों ने भी गुण एवं संख्या की दृष्टि से प्रभूत सैद्धान्तिक साहित्य लिखें। उन विद्वानों में—पं० भीमसेन शर्मा, (सनातनी होने से पूर्व) पं० शिवशङ्कर शर्मा काव्यतीर्थ, महामहोपाध्याय आर्य मुनि, पं० क्षेम-करण दास त्रिवेदी, स्वामी तुलसीराम, स्वामी श्रद्धानन्द तथा पं० धर्मवीर लेखराम आर्य मुसाफिर प्रभृति प्रमुख थे। पं० भीमसेन शर्मा 'आर्य सिद्धान्त' नामक पत्र के माध्यम से जहाँ अवैदिक मतों का योग्यता पूर्वक खण्डन किया वहाँ मण्डनात्मक साहित्य की भी रचना की। स्वामी तुलसी राम मेरठ से निकलनेवाले अपने पत्र में सनातनी हुए पं० भीमसेन शर्मा के लेखों का युक्तियुक्त उत्तर देते रहे। इसके साथ ही स्वामी जी ने सामवेद भाष्य तथा मनुस्मृति का सुन्दर सम्पादन एवं अनुवाद भी किया। त्रिवेदीजी ने अथर्ववेद भाष्य, गोपथ ब्राह्मण का सम्पादन व अनुवाद के अतिरिक्त भी कई छोटे-मोटे ग्रन्थों की रचना की। स्वामी श्रद्धानन्द ने 'सद्धर्म प्रचारक' में अनेकविध लेख आर्य समाज के प्रचार के लिए लिखे। पं० धर्मवीर लेखराम ने विरोधियों के पुस्तकों का मुँहतोड़ उत्तर अपने कई पुस्तकों द्वारा देकर अपना नाम सार्थक किया। अमर-शहीद धर्मवीर लेखराम ने मृत्यु शय्या से आर्यों के नाम अपने अन्तिम सन्देश में भी कहा था—"आर्य समाज से लेख का काम बन्द नहीं होना चाहिए"।

धर्मवीर के पथ पर चलते हुए आगे के आर्य विद्वानों—लाला दीवानचन्द एम० ए०, पं० भगवद्दत्त रिसर्च स्कॉलर एवं पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय आदि मनीषियों ने सर्वोच्च कोटि के प्रभूत

Scanned by CamScanner

ग्रन्थ लिखकर आर्य समाज के साहित्य-भण्डार को भरा। आज भी उन सभी विद्वानों की पुस्तकें हमारे दिशा निर्देश एवं सैद्धान्तिक मान्यताओं को अटूट बनाने में पथ प्रदीप का काम करते हैं।

महर्षि के लिखे एक 'सत्यार्थ प्रकाश' ने ही कितनों को वेदानुयायी बनाया कहा नहीं जा सकता। हमारे ग्रन्थ जहाँ कहीं पहुँचे लोगों में तहलका मच गया। सभी व्यक्ति अपने-अपने धार्मिक विचारों पर सोचने को विवश हुए। इस प्रकार वैदिक सिद्धान्तों का अधिकाधिक प्रचार, स्थायीत्व तथा सत्साहित्य की वृद्धि आदि में आर्य ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण योग निर्विवाद है।

इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए आर्य समाज लल्लापुरा (वाराणसी) ने प्रकृत पुस्तिका का प्रकाशन किया है। आर्य समाज लल्लापुरा अपने स्थापना काल (५ मार्च १९४३ ई०) से ही सत्य सनातन वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार अपूर्व लगन तथा अदम्य उत्साह से करता आया है। वैदिकसिद्धान्तों के व्यापक प्रचार के लिए अब हमारे 'समाज' ने आर्य साहित्य के प्रकाशन का निश्चय किया है और हम अपने प्रकाशन माला के प्रथम पुष्प 'पौराणिक आचार्यों की दृष्टि में साकारवाद' को प्रबुद्ध पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं। इस पुस्तक की मौलिक विशेषता यह है कि सनातन धर्मी सामान्य जनता अपने जिन धार्मिक-ग्रन्थों और मान्य आचार्यों को प्रमाण रूप में मानती हैं, उन्हीं ग्रन्थों और विद्वानों के मत से वेद विरुद्ध—साकारवाद, मूर्ति-पूजा तथा अवतारवाद का युक्तियुक्त तर्क सङ्गत खण्डन किया गया है। परमात्मा के वास्तविक स्वरूप बोधक इस ग्रन्थ को प्रकाशक ने जानबूझ कर अपने प्रथम प्रसून

Scanned by CamScanner

के रूप में उपस्थित किया है। क्योंकि आधुनिक युग में हमारे देश में ही अनेक नये मत-मतान्तर उठ खड़े हुए हैं और बहुतों ने तो अपने को ईश्वर या ईश्वर का अवतार तक घोषित कर दिया है। इस प्रकार वे भोली-भाली जनता और धर्म-प्रेमी शिक्षित जनों का भी धार्मिक शोषण कर रहे हैं। बुरी बात तो यह है कि ये स्वार्थी तथा व्यक्तिपूजक तत्त्व धर्म के ओट में अनेक प्रकार की कुरीतियों, अन्धविश्वासों तथा निरर्थक क्रियाकलापों से राष्ट्र को अज्ञान के गहरे गर्त्त में ढ़केल कर मनुष्य को बौद्धिक नैतिक तथा सामाजिक सभी दृष्टियों से पतित कर रहे हैं। आस्तिक सम्प्रदायों में भी सबसे बड़ा झगड़ा ईश्वर के स्वरुप के सम्बन्ध में ही है आज के वैज्ञानिक युग में तर्क युक्त व बुद्धि पूर्वक परमात्मा के सत्य स्वरुप को जानने से ही धर्म का वास्तविक बोध हो सकता है। एवं आत्मिक ज्ञान की पिपासा शान्त हो सकती है।

इस लघु पुस्तक को हम माननीय पं० श्री ओम् प्रकाश जी शास्त्री 'विद्याभास्कर' की कृपा से प्रकाशित करने में समर्थ हुए हैं। आदरणीय शास्त्री जी के हम बहुत-बहुत आभारी हैं कि उन्होने हमारे छोटे 'समाज' पर महती अनुकम्पा करके प्रकृत पुस्तक का सर्वाधिकार आर्य समाज लल्लापुरा को दिया है। एतदर्थ हम पूज्य शास्त्री जी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। प्रेस कॉपी में रह गई अशुद्धियों को ठीक करने तथा प्रूफ देखने का कार्य हमारे प्रिय ब्र० ज्वाला प्रसाद जी शास्त्री ने किया है। इसके लिए मैं श्री शास्त्री जी को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

बुद्धदेव "आर्य"
आर्यसमाज, लल्लापुरा, वाराणसी

Scanned by CamScanner

॥ ओ३म् ॥

आशीर्वचन

श्री अमर स्वामी जी महाराज शास्त्रार्थ महारथी

विद्याभास्कर श्री पं० ओम् प्रकाश जी शास्त्री प्रभाव शाली और सिद्धान्तवादी आर्य महोपदेशक हैं। शास्त्री जी—महर्षि दयानन्द जी महाराज द्वारा प्रदर्शित वैदिक सिद्धान्तों पर ही प्रायः सदा व्याख्यान देते हैं, श्री शास्त्री जी ने "पौराणिक आचार्यों की दृष्टि में साकारवाद" नामक छोटी सी पुस्तिका लिखी है। पुस्तिका क्या है पुष्ट प्रमाणों की पिटारी है। छोटी सी पुस्तिका में इतने प्रमाण दे दिये हैं जितने बड़ी-बड़ी पुस्तकों में भी मिलने कठिन हैं।

कई लेखक ऐसी पुस्तकें लिखते हैं कि जो आकार प्रकार में बहुत लम्बी-चौड़ी होती हैं पढ़ने वाला पढ़-पढ़ कर थक जाता है पर सार थोड़ा ही प्राप्त होता है—

"ज़ाफ़र जटल्ली ने ऐसा किया,
कि—खटमल को मलमल के भैंसा किया।

मुझको ऐसी पुस्तकें पसन्द नहीं हैं। श्री शास्त्री जी ने अति संक्षेप में लिखते हुए इस पुस्तिका में पर्याप्त प्रमाण रूप सामग्री प्रदान की है इसके लिये वे धन्यवाद के पात्र हैं।

आज आर्य विद्वानों के सम्मुख कई कठिनाइयां हैं—

Scanned by CamScanner

१—अधिक यात्रा में रहने के कारण लिखने के समय का अभाव।

२—पुस्तक छपाने के लिये धन का अभाव।

३—येन केन प्रकारेण पुस्तक छप भी जाय तो उसको बेचने की उपदेशक के सम्मुख बड़ी कड़ी समस्या रहती है।

श्री शास्त्री जी इस विषय पर इससे बड़ी पुस्तक भी लिख सकते थे और पौराणिक साहित्य में इस विषय के इतने प्रमाण हैं कि—उन सबका संग्रह किया जाय तो एक बड़ा ग्रन्थ बन जाय। पर ऊपर लिखी कठिनाइयों के कारण जितना लिखा है उतना ही बहुत है। इस पुस्तिका का बहुत प्रचार होना चाहिये।

अमर स्वामी परिव्राज़क
अध्यक्ष
सार्वदेशिक दयानन्द संन्यासी
वानप्रस्थ मण्डल ज्वालापुर (हरिद्वार)
निवास स्थान—ग़ाज़ियाबाद।

Scanned by CamScanner

॥ ओ३म् ॥

दो शब्द

ऋषि दयानन्द ने सन् १८६७ में हरिद्वार में कुम्भ के अवसर पर 'पाखण्ड-खण्डिनी पताका' लहराई थी, जो भविष्य में पाखण्ड, अन्ध-विश्वास और रूढ़ियों के उच्छेदन की प्रतीक बनकर आर्यों के हृदयों को इनके उन्मूलन की प्रेरणा देती रही। ऋषि के वेद प्रचार कार्यक्रम की दूसरी प्रमुख घटना उनके तथा भारत के तात्कालिक सनातन धर्मी विद्वानों के बीच हुआ सन् १८६८ का प्रसिद्ध 'काशी-शास्त्रार्थ' था। ये दोनों घटनाएं उत्तर प्रदेश में हुई थी, अतः आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश ने ऋषि दयानन्द के जीवन से सम्बन्धित इन दोनों महत्वपूर्ण घटनाओं को दिसम्बर १९६९ में अखिल भारतीय स्तर पर शताब्दी मनाने का निश्चय किया। कार्यक्रम तैयार किया गया, देश के कई भागों में प्रचार शास्त्रार्थ आदि किए गये और दिसम्बर २३ से २८ तक मुख्य समारोह वाराणसी में करने का निश्चय किया गया। यह स्वाभाविक ही था कि सनातनी भाइयों में इसकी प्रतिक्रिया हुई और उन्होंने भी उन्हीं दिनों वाराणसी में ही अपना विशेष आयोजन रखा। इससे उन दिनों वाराणसी तथा समीपवर्ती स्थानों में ये समारोह सार्वजनिक आकर्षण के विषय बन गये। स्थान-स्थान पर, समाचार पत्र आदि में इनकी प्रमुख रूप से चर्चा होने लगी। आर्यसमाजी कार्यकर्त्ता प्रायः सनातन धर्म के सभामण्डप में

Scanned by CamScanner

जाकर शंकाएं रखने लग गये, जो कभी-कभी संक्षिप्त वाद-विवाद का रूप धारण कर लेती थी। संवाद दातागण संवाद देने के लिए लालायित हो उठे और समाचार पत्रों में दोनों ओर से अपने पक्ष की पुष्टि में वक्तव्य प्रकाशित होने लगे।

उन्हीं दिनों कुछ सज्जन हमारे पास आये और कहा कि आप लोग कहते हैं कि मूर्ति पूजा अवैदिक है, वेदों में मूर्तिपूजा का नाम भी नहीं, परन्तु वे लोग कहते हैं कि मूर्तिपूजा वैदिक है। क्यों न इसका निर्णय एक सार्वजनिक शास्त्रार्थ द्वारा कर लिया जावे। विचार-परामर्श प्रारम्भ हो गया, शास्त्रार्थ के स्थान, व्यवस्था, नियम आदि पर विचार होने लगा। यह पूर्ण भी न हो पाया था कि एक दिन सायं काल, जब आर्य समाज का सभा-मण्डप खाली पड़ा था (नर-नारी सायंकालीन नित्य कर्म के लिए इधर-उधर गये हुए थे) अचानक ही लगभग दो हजार सनातनी साधु, सन्यासी तथा उनके अनुयायी शिविर में आ गये और मञ्च एवं मण्डप में बैठ गये। उस समय का वातावरण अत्यन्त उत्तेजना पूर्ण था। बाहर से आने वाले सज्जन नारे लगा रहे थे और शान्ति रखने के प्रयासों को विफल कर रहे थे। कुछ ही देर में सिटी मजिस्ट्रेट एक अन्य अधिकारी के साथ वहाँ आ गये और परिस्थिति को देखकर वहाँ १४४ धारा लगाकर जनता को सभा मण्डप खाली करने का आदेश दे दिया। इस प्रकार शास्त्रार्थ करने का एक सुन्दर अवसर हाथ से निकल गया।

शताब्दी समारोह में व्याख्यान देने तथा संभावित शास्त्रार्थ में आर्यसमाज का पक्ष प्रतिपादन करने के लिए हमने जिन विद्वानों को आमन्त्रित किया था, उनमें आर्यसमाज के सुपरिचित वाग्मी, शास्त्रार्थ महारथी पं०

Scanned by CamScanner

ओमुप्रकाश शास्त्री जी भी थे। शास्त्रार्थ सम्बन्धी पत्र-व्यवहार तथा विचार-परामर्श में श्री शास्त्री जो के अनुभव से लाभ उठाने के अतिरिक्त, शास्त्रार्थ में आर्यसमाज के मुख्य वक्ता के लिए श्री शास्त्री जी का ही चयन किया गया था। परन्तु दुर्भाग्यवश शान्त वातावरण में शास्त्रार्थ करने का अवसर ही न आ पाया। तब अनेक मित्रों ने इच्छा प्रकट की, कि श्री शास्त्री जी "मूर्तिपूजा अवैदिक है" इस सम्बन्ध में अपने विचार व्याख्यान द्वारा जनता तक पहुँचाने की कृपा करें। श्री शास्त्री जी सहर्ष उद्यत हो गये और उन्होंने अपने व्याख्यान का विषय रखा—

"साकारवाद की अन्त्येष्टि।"

शास्त्री जी का स्थान आर्यसमाज के उच्चकोटि के व्याख्याताओं में है। उनके भाषण भाव और शैली दोनों ही दृष्टियों से अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं। उनमें पाण्डित्य, तर्क, माधुर्य. मनोरंजन आदि प्रायः सभी गुणों का समावेश होता है। हमें शास्त्री जी के अनेक भाषण सुनने का सुअवसर मिला है सम्भवतः ऐसा कभी नहीं हुआ कि भाषण को पुरा सुने बिना हम उठ आये हों। उनको सुनने की लालसा सदा बनी रहती है। "क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" की कहावत उनके व्याख्यानों के बारे में पूर्णतया चरितार्थ होती है। परन्तु उस दिन शास्त्री जी का व्याख्यान अद्वितीय था। उस दिन उनकी भाषण कला का जो रूप हमने देखा, पहले कभी न देखा था। ऐसा पता लगता था कि उस दिन तो पांडित्य एवं वक्तृत्व दोनों ने मिलकर साक्षात् रूप धारण कर लिया हो। नर-नारी उनके भाषण को मन्त्र-मुग्ध होकर सुनते रहे और बीच-बीच में तथा अन्त में हुई करतल-ध्वनि से स्पष्ट ज्ञात होता था कि जनता ने भाषण को अत्यधिक पसन्द किया।

Scanned by CamScanner

यह प्रसन्नता की बात है कि—की आर्य-समाज लल्लापुरा (वाराणसी) ने उस भाषण को प्रकाशित कराने का निश्चय किया है। इससे भाषण को स्थायी साहित्य में स्थान मिल जावेगा और वे सज्जन भी इससे लाभ उठा सकेंगे, जो भाषण के समय वहाँ उपस्थित न थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुस्तक सब प्रकार उपादेय है और पुस्तकालयों में स्थान पाने योग्य है।

ज्ञान-प्रकाश की वृद्धि में एक देदीयप्मान दीप शिखा दान के लिए हम शास्त्री जी को हार्दिक बधाई देते हैं।

महेन्द्रप्रताप शास्त्री
मन्त्री,
काशी शास्त्रार्थ शताब्दी, वाराणसी (१९६९)

Scanned by CamScanner

॥ ओ३म् ॥

प्राक्कथन

गत 'काशी शास्त्रार्थ-शताब्दी-समारोह" के अवसर पर काशी में मेरा एक भाषण "साकार वाद की अन्त्येष्टि" विषयक हुआ था। जिसमें लगभग २५ सहस्र जनता के अतिरिक्त आर्य तथा पौराणिक जगत् के दर्जनों विद्वान् आर्य समाज के मंच पर उपस्थित थे। व्याख्यान प्रारम्भ करते हुए मैंने एक प्रतिज्ञा की, कि आज का भाषण, मुझे स्वयं ज्ञात नहीं कि कितनी देर चलेगा, क्योंकि सम्मेलन के संयोजक श्री पं० महेन्द्र प्रताप जी शास्त्री ने मुझे आज मुक्त समय दे दिया है। अतः भाषण जितना भी लम्बा हो, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, कि 'आज के भाषण में मैं एक भी पंक्ति किसी आर्य समाजी विद्वान् की प्रस्तुत नहीं करूँगा। केवल पौराणिक आचार्यों तथा विद्वानों के लेखाधार पर ही "साकार वाद" "मूर्ति पूजा" तथा "अवतार वाद" का खण्डन किया जायेगा। वेदों का भाष्य आचार्य सायण, महीधर तथा उव्वट का, और वेदान्त दर्शन तथा उपनिषदों का भाष्य आचार्य शंकर, रामानुज, मध्वाचार्य तथा हरिप्रसाद

Scanned by CamScanner

वदिक मुनि का प्रस्तुत किया जायेगा। उक्त भाषण लगभग दो घण्टे तक चला। जनता स्तब्ध होकर भाषण का रसास्वादन करती रही। भाषण में प्रस्तुत प्रमाणों की झड़ी देख कर भाषण के पश्चात् वहाँ उपस्थित आर्य विद्वानों तथा नेताओं ने मुझसे इस व्याख्यान को लिख कर प्रकाशित कराने का आग्रह किया। यद्यपि मुझमें लिखने की क्षमता "नहीं" के बराबर है। कुछ अपना प्रमाद भी इसका कारण है। फिर भी विषय की उपयोगिता को देखते हुए, इसे प्रकाशित करना आवश्यक तथा उचित प्रतीत हुआ। अतः कुछ समय लगाकर उक्त भाषण को लिपिबद्ध करने का संकल्प किया, जिसका परिणाम इस लघु पुस्तिका के रूप में उपस्थित है। पुस्तिका का नाम सोच समझ कर रक्खा गया है। सम्मेलन के अवसर पर भाषण का विषय तात्कालिक परिस्थिति के अनुरूप था। प्रकाशन काल में उसे अनुपयुक्त समझ कर बदल दिया गया है।

पुस्तिका बहुत पूर्व ही आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद (दक्षिण) की ओर से प्रकाशित होने के लिये सभा को दे दी गई थी। कई वर्षों तक उनके यहाँ पड़ी भी रही परन्तु प्रकाशित न हो सकी। अन्त में उनसे वापिस मँगाना पड़ा। सम्प्रति आर्य समाज लक्ष्मापुरा वाराणसी के अधिकारियों ने अपने समाज की ओर से इसके प्रकाशन का समस्त भार अपने ऊपर लेकर मुझे प्रकाशन की चिन्ता से मुक्त किया, इसके लिये मैं उनका धन्यवाद करना तथा अपना आभार प्रकट करना आवश्यक कर्त्तव्य समझता हूँ।

Scanned by CamScanner

मुझे आशा है कि पाठक गण इसका स्वाध्याय करके लाभान्वित होंगे और साथ ही पौराणिक जगत् सत्य के ग्रहण करने और असत्य-मत के परित्याग के लिये तय्यार होगा।

विनीतः—

ओम्प्रकाश शास्त्री विद्याभास्कर

खतौली

Scanned by CamScanner

वैदिक धर्म प्रचारक आर्य समाज और तथाकथित सनातन धर्म अर्थात् पौराणिक सम्प्रदाय में परस्पर जिन मौलिक सिद्धान्तों में मतभेद है, उनमें मुख्य ईश्वर स्वरूप के सम्बन्ध में है। प्रायः पौराणिक बन्धु ईश्वर के निराकारत्व पक्ष को स्वीकार करके भी ब्रह्म के (ईश्वर के) निराकार तथा साकार दो रूपों को स्वीकार करते हैं परन्तु शास्त्रार्थ शङ्का समाधान आदि के अवसरों पर वह ब्रह्म के साकार पक्ष के पोषण में कोई ठोस प्रमाण तथा युक्ति नहीं दे पाते। जहाँ तक पौराणिक मत के मान्य प्राचीन आचार्यों का मत है पाठकों को यह लेख पढ़कर आश्चर्य होगा कि वह भी साकार पक्ष विरोधी रहे हैं।

प्रथम-वेद मन्त्रों के आधार पर ईश्वर के साकारवाद के खण्डन में प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं। जिनके भाष्य भी पौराणिक मान्य आचार्यों के ही उद्धृत किये जायेंगे।

मन्त्रों के प्रतीक मात्र ही दिये जा रहे हैं।

(क) "न तस्य प्रतिमा अस्ति" यजुर्वेद ३२।३।

Scanned by CamScanner

इत्यादि मन्त्र ऋग्वेद में भी है, जिस पर भाष्य करते हुए सायणाचार्य ने

"न प्रतिमानमस्ति । प्रतिमानम्-प्रतिनिधि यह कहकर परमेश्वर की प्रतिमा या मूर्ति का खण्डन किया है । इसी प्रकार—

(ख) "सर्वे निमेषा जज्ञिरे" यजुः ३२।२ मन्त्र पर भाष्य करते हुए आचार्य महीधर ने स्पष्ट लिखा—

"न ह्यसौ प्रत्यक्षादीनां विषयः"

अर्थात् परमेश्वर प्रत्यक्षादि विषय ग्राह्य नहीं है अर्थात् वह साकार नहीं अपितु निराकार मात्र है ।

इसी प्रकार :—

(ग) "स पर्यगात्" यजुः ४०।८ मन्त्र पर भाष्य करते हुए आचार्य महीधर तथा मध्वाचार्य जी ने क्रमशः निम्न शब्दों में साकार वाद का स्पष्ट खण्डन किया है--

महीधरः—अकायम्-न कायं शरीरमस्य । स्थूल-शरीर प्रतिषेधः ।
अर्थात् परमेश्वर के स्थूल शरीर नहीं होता ।

मध्वाचार्यः—

"शुक्रंतच्छोकराहित्यात्, अव्रणं नित्य पूर्णतः । पावनत्वात् सदाशुद्धम् लिंग वर्जनात् । स्थूलराहित्यात् । ईशोपनिषद् भाष्य ।

इसी मन्त्र का भाष्य करते हुए आदि शङ्कराचार्य जी ने भी अकायम्-अशरीरं लिंग शरीर वर्जितम् । लिखकर स्वयं साकार वाद का स्पष्ट खण्डन कर दिया है ।

Scanned by CamScanner

कई वर्ष पूर्व मुझे पौराणिक पण्डित श्री माधवाचार्य जी से एतद् विषयक शंका समाधान करने का अवसर खतौली के समीप पुरवालियान में मिला था। उन्होंने ब्रह्म के उभय रूप-पक्ष-प्रतिपादन में—

दवे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तञ्चामूर्तञ्च।

इस वाक्य को रखा। मैंने उनसे निवेदन किया कि श्रीमन्! इस वाक्य में 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ ईश्वर नहीं है, अपितु 'संसार' है। अर्थात् जब यह संसार उत्पन्न नहीं होता तब तक यह अव्यक्त कारण रूप में रहता है, जिसे यहाँ अमूर्त कहा गया है और जब यह कारण रूप जगत् उत्पन्न होकर नाना रूपों में प्रकट और व्यवहार में आ जाता है, तब इसे मूर्त रूप में कहा जाता है। मैंने उन्हें नव्य नैयायिक मत दर्शक श्री अन्नंभट्ट की पंक्तियाँ सुनाकर बताया कि जितने उत्पन्न भौतिक द्रव्य अग्नि, पृथ्वी, जल तथा वायु हैं इन चारों के उक्त आचार्य ने नित्य-अनित्य, सूक्ष्म-स्थूल, अव्यक्त-व्यक्त, कारण-कार्य्यरूप में दो-दो रूप स्वीकार किये हैं। अतः यहाँ ब्रह्म का भाव ईश्वर न लेकर जगत् ही लेना चाहिए। ईश्वर के अर्थात् परब्रह्म के ऊभय स्वरूप के खण्डन में स्वयं जगद् गुरु शंकराचार्य जी महाराज ने वेदान्त दर्शन के—

"न स्थानतोऽपि परस्योभयलिंगं सर्वत्र हि"।

वे० सू० ३-१-११

सूत्र का अर्थ करते हुये निम्न पंक्तियाँ लिखी, जिनमें परब्रह्म के साकार पक्ष का प्रबल खण्डन होता है—

Scanned by CamScanner

श्री शङ्कराचार्य जी लिखते हैं :—

'न तावत स्वत एव' परस्य ब्रह्मण' उभय लिङ्गम् उपपद्यते, न ह्येकं वस्तु स्वत एवं रूपादिविशेषोपेतं तद् विपरीतं शक्यं विरोधात्। अस्तु। तर्हि स्थानतः पृथिव्यादि उपाधि योगादिति ? तदपि नोपपद्यते। न हि उपाधि योगादपि अन्यादृशस्य वस्तुनोऽन्यादृशः स्वभावः सम्भवति। न हि स्वच्छः सन् स्फटिको मणि अलक्तकादि उपाधि योगादस्वच्छो भवति। अतश्चान्तरपरिग्रहेऽपि समस्तं निर्विकल्पं ब्रह्म प्रतिपत्तव्यम्। इत्यादिषु अपास्तसमस्तविशेषमेव ब्रह्म उपदिश्यते।

भावार्थ—प्रथम तो 'परब्रह्म' के अपने दो परस्पर विरोधी रूप नहीं हो सकते। क्योंकि एक वस्तु स्वयं अपने दो विरोधी गुण, कर्म, स्वरूपादि नहीं रख सकता। अपने स्वभाव का विरोध होने के कारण। यदि पृथिवी आदि की उपाधि से दो रूप मानों तो भी नहीं। क्योंकि उपाधि संयोग से भी एक अपने स्वाभाविक स्वरूप वाली वस्तु अन्य स्वभाव और स्वरूप वाली नहीं हो सकती। जैसे स्वच्छ स्फटिक, मणि, अलक्तक आदि उपाधि के संयोग से अस्वच्छ नहीं होता। अतः अन्य पृथिव्यादि के उपाधि योग से भी उस परब्रह्म को निर्विकल्प ही जानना चाहिए। इसके विपरीत परस्पर विभिन्न स्वरूपों का नहीं।

इसके अतिरिक्त इसी वेदान्त सूत्र पर भामती टीकाकार ने "द्वेवाव ब्रह्मणो रूपे०" वाक्य को सम्मुख रखकर निम्न प्रश्न उठाया :—

प्रश्न—तत्र उभयलिङ्गं श्रवणात् उभयरूपत्वं ब्रह्मणः प्राप्तम्।

उत्तर—न स्थानत उपाधितोऽपि परस्य ब्रह्मण उभयलिङ्गं चिद्रूपत्व-संभवः।

Scanned by CamScanner

 ३२२

अर्थात् स्थानादि की उपाधि से भी परब्रह्म के दो रूप मूर्त और अमूर्त होने सम्भव नहीं।

अपि च—

इसी सूत्र पर 'रत्न प्रभा' टीकाकार लिखते हैं—

निर्विशेषत्वं सविशेषत्वं चोभय लिंग्यते ज्ञाप्यते याभिः ताः उभयलिङ्गाः श्रुतयः संशय बीजत्वेन सन्तीत्यर्थः।···निर्विशेषमेकरूपमेव ज्ञेयमिति सिद्धायति किम् उभयरूपत्वं स्वतः? उत स्वतो निर्गुणस्य सर्वगन्धत्वादि विशेष उपाधितः सत्यम् आहोस्विद् स्वतः सविशेषमेव ब्रह्मेति? तत्राद्यं निरस्य द्वितीयमनूद्य दूषयति।

उक्त पंक्तियों का भाव यह है कि "द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे" जैसे वाक्य यद्यपि ब्रह्म के सम्बन्ध में दो रूपों का सन्देह अवश्य डालते हैं परन्तु सत्य सिद्धान्त यह ही है कि ब्रह्म स्वरूप से निराकार ही है। परस्पर दो विरोधी स्परूप होना असम्भव है। इसी पर आनन्दगिरि भाष्यकार लिखते हैं—

"प्रथमं ब्रह्मणो नोभयरूपता इत्यभिप्रेत्याह" अर्थात् पहिले तो ब्रह्म के दो रूप हो ही नहीं सकते सो क्यों? उत्तर देते हैं—

नैकस्मिन् सम्भवात्।

वेदान्त सूत्र २।२।३३

इस पर शङ्कराचार्य जी महाराज लिखते हैं—

"न ह्येकस्मिन् धर्मणि युगपत् सदसदादि विरुद्ध धर्मसमावेशः सम्भवति शीतोष्णवत्।

अर्थात्—एक द्रव्य में एक साथ दो परस्पर विरोधी गुण सत् और असत् नहीं रह सकते। यथा जल में शैत्य और उष्णता एक समय एक साथ कभी नहीं रह सकते। तथाहि ब्रह्म के दो विरोधी मूर्त और अमूर्त रूप सम्भव नहीं। इसके अतिरिक्त वेदान्त दर्शन के निम्न सूत्र पर—

"अरूपवदेव हि तत् प्रधानत्वात्।

३।२।२४

श्री मध्वाचार्य तथा श्री आद्य शंकराचार्य जी महाराज की निम्न पंक्तियाँ भी ब्रह्म के साकार होने का खण्डन करती हैं--

श्री मध्वाचार्य :—

"प्रकृत्यादि प्रवर्तकत्वेन तदुत्पत्तिमत्वात् नैव रूपवद् ब्रह्म। अस्थूलम् अनणुः इत्यादि श्रुतेश्च।

भौतिकानि हिरूपाणि भूतेभ्योऽसौ परो यतः।
अरूपवानतः प्रोक्तः, क्वे तद् व्यक्ततः परः॥

अर्थात् वह ब्रह्म प्रकृति का प्रवर्तक तथा जगत्कर्त्ता है। वह न स्थूल परिमाण वाला है। आकार या रूप भौतिक पदार्थों में होता है परन्तु ब्रह्म भूतों से पृथक् है। अतः उसे अरूपवान् तथा व्यक्त स्थिति से पृथक् कहा गया है।

श्री शङ्कराचार्य : —

रुपाद् आकार रहितमेव ब्रह्म अवधारयितव्यम्। न रूपादिवत्। कस्मात्? तत्प्रधानत्वात्। तस्मादेवं जातीयकेषु यथाश्रुतं निराकारमेव ब्रह्मावधारयितव्यम्। इतराणि तु आकारवद् ब्रह्मविषयाणि वाक्यानि न

Scanned by CamScanner

प्रधानानि। उपासनादि विधि प्रधानानि हितानि। तेषु असति विरोधे यथाश्रुतिमाश्रयितव्यम्। सत्सु विरोधेषु ततप्रधानेभ्यो बलवानपि भवन्तीति। एष विनिगमनाय हेतुः। येन उभयोष्वपिश्रुतिषु सतीषु अनाकारमेव ब्रह्मावधार्यम् न पुनर्विपरीतम् इति।"

वे०। ३। २। १४

भावार्थः—ब्रह्म को रूपादि आकार रहित ही मानना चाहिये न, कि रूपादि आकार वाला। सो क्यों? निराकार साधक श्रुतियों के प्रधान होने के कारण। इसलिए वेद की प्रधानता से ब्रह्म निराकार सिद्ध होता है। इनके विरुद्ध जो श्रुतियाँ (उपनिषदादि वाक्य) ब्रह्मा को साकार प्रकट करतो हैं। वे वेद के सम्मुख अप्रधान अर्थात् तुच्छ है। यदि इन वाक्यों से वेद की विरोध स्थिति उत्पन्न हो तो वेद को प्रधान प्रमाण मान कर उसके सिद्धान्त को ही मानना चाहिये। चूँकि यह नियम है कि विरोध होने पर अप्रधान से प्रधान बलवान है अतः दानों प्रकार के वाक्य मिलने पर ब्रह्म को वेदानुकूल निराकार हो मानना चाहिये। इसके विपरीत साकार नहीं। इसीके साथ वर्तमान काल के मूर्धन्य विद्वान् श्री स्वामी हरि प्रसाद जी की वेदान्त दर्शन के निम्न सूत्र पर की गई भाष्य पंक्तियाँ भी ईश्वर के साकार पक्ष का खण्डन करती है।

पत्युरसामंजस्यात्।

वेदान्त २। २। ३७

श्री स्वामी हरिप्रसाद जी :—

पत्युः प्रकृतिपुरुषाणां पत्युः अधीश्वरस्य शरीरत्वाभ्युपगमो न युज्यते। कुतः? असामंजस्यात्। जगत्स्रष्टात्वादित्यर्थः। यः खलु स्वरूपतः

Scanned by CamScanner

परिच्छिद्येते सः शक्तितोऽपि परिच्छिद्यते। तस्मात् प्रकृतिपुरुषेश्वरः शरीरी इति अयुक्तम्।

अर्थात् जो ब्रह्म प्रकृति पुरुष का रक्षक तथा स्वामी है उसका शरीर होना युक्ति विरुद्ध है। क्यों? इसलिये कि वह जगत को उत्पन्न करने वाला है। यह निश्चित बात है कि जो आकार से परिच्छिन्न होता है वह शक्ति से भी परिच्छिन्न (सीमित) होता है। अतएव प्रकृति पुरुष पर शासन करने वाला जगत्स्रष्टा ब्रह्म को शरीरी अर्थात् साकार मानना विरुद्ध है।

वेदान्त दर्शन के एक और सूत्र पर भी उक्त स्वामी जी महाराज तथा श्री शंकराचार्य जी महाराज की निम्नलिखित पंक्तियाँ विचारणीय है।

अधिष्ठानानुपपत्तेश्च ।

वेदान्त २। २। ३६

स्वामी हरप्रसाद जी :—

अधिष्ठानम् शरीरम्। तदनुपपत्तेः पत्युः शरीरत्वं न युज्यते।

अर्थात् यहाँ अधिष्ठान का अर्थ शरीर है। यह ब्रह्म का नहीं होता। क्योंकि जगत् के स्वामी का शरीरी होना अयुक्त है।

श्री शङ्कराचार्य :—

सृष्टेःयुत्तरकालभावित्वात् शरीररूपस्य प्राक् सृष्टेः तदनुपपत्तेः।

अर्थात् शरीरादि सृष्टि की उत्पत्ति के पश्चात् बनने सम्भव है। सृष्टि से पूर्व नहीं। अतः ब्रह्म स्वरूप से शरीर रहित ही है।

Scanned by CamScanner

वेदान्त दर्शन के इससे अगले सूत्र पर भी उपर्युक्त स्वामी हरिप्रसाद तथा श्री शंकराचार्य जी का निम्न भाष्य विचारणीय हैं।

करणवत् चेत् न भोगादिभ्यः।

वेदान्त २।२।४०

श्री स्वामी हरप्रसाद जी :—

प्रकृतिपुरुषाणां पत्युः शरीरकरणवत् चेत्, यदि मन्यते, तदा न मन्तव्यम्। कुतः? भोगादिभ्यः भोगहेतवः सवासनाः। कर्मक्लेशादिना संगृह्यते, भोगादि प्रसंगादित्यर्थः।

अर्थात् प्रकृति पुरुष का स्वामी ब्रह्म यदि शरीरेन्द्रिय वाला माना जाय तो ठीक नहीं। क्यों? इसलिए कि इससे ब्रह्म में वासना तथा भोग, क्लेश कर्म आदि सभी दोष आ जायेंगे।

श्री शङ्कराचार्य :—

"अथ लोक दर्शनानुसारेणईश्वरस्यापि किंचित्करणानाम् आयतनं कामेन कल्पते। एवमपि न उपपद्यते। शरीरत्वे हि सति संसारीवद् भोगादित्वप्रसङ्गात् ईश्वरस्यापि अनीश्वरत्वम् प्रसज्येत।

अर्थात् यदि मनुष्यों के समान ईश्वर के भी इन्द्रियों की और शरीर की कल्पना करे तो वह ठीक नहीं। क्यों? यदि ईश्वर को भी मनुष्यों के समान माना जाये तो वह भी संसारी मनुष्यों के समान भोगादि में फँस जायेगा। इससे तो ईश्वर, ईश्वर नहीं रहेगा। अतः ईश्वर निराकार ही है। साकार नहीं। ब्रह्म का इच्छामय शरीर भी नहीं।

वेदान्त दर्शन के उपरिलिखित २।२।४० वाले सूत्र पर ही "रत्न प्रभा" व्याख्याकार निम्न पंक्तियों में लिखते हैं।

Scanned by CamScanner

करणान्यत्र सन्ति इति करणवत् शरीरम् । इच्छामय शरीरकल्पना एषा अनुपपन्ना, मानाभावात् भौतिकत्वनियमविरोधाच्चेति मन्तव्यम् ।

भावार्थ—जिसमें करण अर्थात् इन्द्रियादि हो, उसे शरीर कहते हैं । ब्रह्म इन कारणों से रहित है । इच्छामय शरीर की कल्पना भी अयुक्त है । क्योंकि इसमें कोई प्रमाण नहीं और ऐसा इच्छामय शरीर भौतिक नियमों के विरूद्ध है ।

इस प्रसंग में वेदान्त दर्शन के निम्न सूत्र पर आनन्दगिरि की व्याख्या भी निम्न शब्दों में साकार वाद का खण्डन करती है ।

"अन्तवत्वम् असर्वज्ञता वा"

वेदान्त २।२१।४३।

"अन्तवत्वम् अन्तो विनाशः तद्वत्वम् । असर्वज्ञता वा । असर्वज्ञत्वं च पत्युः शरीरत्वे प्रसज्येत्" इत्यर्थः ।

अर्थात् अन्त कहते हैं विनाश को । यदि ब्रह्म को साकार माना जाये तो वह विनाशी हो जायेगा और ब्रह्म को साकार मानने से वह सर्वज्ञ न रहकर अल्पज्ञ हो जायेगा । अतः ब्रह्म जो प्रकृति पुरुष का स्वामी है वह साकार नहीं हो सकता ।

इस प्रकार अन्य और भी बहुत प्रमाण दर्शन शास्त्रों और उनपर पौराणिकों द्वारा मान्य आचार्यों के भाष्यों व लेखों के रूप में दिये जा सकते हैं परन्तु वह पिष्टपेषण मात्र होगा तथा लेख का कलेवर भी व्यर्थ बढ़ेगा । अतः उन्हें छोड़कर इस लेख का उपसंहार करते हुए वाराह पुराण के निम्नलिखित श्लोक ब्रह्म के साकार पक्ष के खण्डन में प्रस्तुत किये जा

Scanned by CamScanner

रहे हैं। पाठकगण, विशेष कर पौराणिक लोग उन पर विचार करें। पुराण में प्रश्न उठाया गया।

प्रश्न— ब्रह्म किं रूपि चाऽरूपि
भवेन्निरूपमेव वा।
द्विविधश्रुति सद्भावात्
ब्रह्म स्यादुभयात्मकम्।

उत्तर— नीरूपमेव वेदान्तैः प्रतिपाद्यमपूर्वतः।
रूपत्वं बुद्धयते भ्रान्तं उभयत्वं विरुद्धयते।
यत् तदेतत्परं ब्रह्म त्वया प्रोक्तं महामुने।
तस्य रूपं न जानन्ति योगिनोऽपि महात्मनः।
अनाम गोत्ररहितममूर्तं मूर्तिवर्जितम्॥

बाराह पुराण ३–१३

प्रश्न—ब्रह्म के क्या साकार और निराकार दो रूप होते हैं ? श्रुति (उपनिषद् वाक्य) के कहने से तो दो रूप प्रतीत होते हैं।

उत्तर—नहीं। वेदान्ती लोग तो उसे सर्वदा से निराकार ही कहते आये हैं। जो उसे साकार मानते हैं वे भ्रान्त हैं। उसके दो विरोधी स्वरूप भी होने अयुक्त है। हे महामुने, जिस परब्रह्म का आपने वर्णन किया है, उसके साकार रूप को तो महात्मा व योगी भी नहीं देख सकते। उनकी मूर्ति बनवाना भी वर्जित है। चूँकि वह स्वरूप से अमूर्त्त है।

Scanned by CamScanner

इसके अतिरिक्त भागवत पुराण के निम्नलिखित श्लोकों से भी ध्यान की वास्तविक स्थिति तथा उसके उपायों का ज्ञान पौराणिक बन्धुओं को हो सकता है। इन श्लोकों की एक अन्य विशेषता की ओर पौराणिक भाईयों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ. वह यह कि वह जो आजकल हरे राम ! हरे राम ! हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! की रट कीर्तनों में लगाते हैं उसके विरुद्ध इन श्लोकों में केवल "ओ३म् या प्रणव" जिसका अर्थ भी ओ३म् ही होता है का जाप करने का विधान है। श्लोक इस प्रकार है—

देशे शुचौ समे राजन् संस्थाप्यासनमात्मनः।
स्थिरं समं सुखं तस्मिन्नासीत् ऋृज्वंग 'ओम्' इति ॥१॥

प्राणापानो सन्निरुन्ध्यात् पूर कुम्भकरेचकैः।
यावन्नमनस्त्यजेत् कामान् स्वनासाग्र निरीक्षणः ॥२॥

यतो यतो निःसरति मनः कामहतंभ्रमन्।
ततस्तत उपादृत्य हृदि रुन्ध्याच्छनैर्बुधः ॥३॥

एवमभ्यसतश्चित्तं कालेनाल्पीयसा यतेः।
अनिशं तस्य निर्वाणं यात्यनिन्धनवह्निवत् ॥४॥

कामादिभिरनाविद्धं प्रशान्ताखिल वृत्तियत्।
चित्तं ब्रह्म सुखं स्पष्टं नैवोत्तिष्ठेत् कर्हिचित् ॥५॥

भागवत पुराण स्कन्ध अ० ७–१५ श्लोक ३१ से ३५ तक

Scanned by CamScanner

युधिष्ठिर। पवित्र और समान भूमि पर अपना आसन बिछाये और सीधे स्थिर भाव से समान और सुखकर आसन से उस पर बैठकर ओंकार का जप करे ॥१॥

जब तक मन संकल्प विकल्पों को छोड़ न दे तब तक नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि जमाकर पूरक कुम्भक और रेचक द्वारा प्राण तथा अपान की गति को रोके ॥२॥

काम की चोट से घायल चित्त इधर-उधर चक्कर काटता हुआ जहाँ तहाँ जाये विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वह वहाँ-वहाँ से उसे लौटा लाये और धीरे-धीरे हृदय में रोके ॥३॥

जब साधक निरन्तर इस प्रकार का अभ्यास करता है, तब इन्धन के बिना जैसे अग्नि बुझ जाती है, वैसे ही थोड़े समय में उसका चित शान्त हो जाता है ॥४॥

इस प्रकार जब कामवासनाएँ चोट करना बन्द कर देती हैं और समस्त वृत्तियाँ अत्यन्त शान्त हो जाती हैं तब चित्त ब्रह्मानन्द के संस्पर्श में मग्न हो जाता है ॥ ५ ॥

सम्प्रति इस लेख को समाप्त करते हुये जो पौराणिक भाई मूर्ति को ईश्वर के ध्यान का साधन समझते हैं उनके भ्रम निवारण के लिए भागवत पुराण में ध्यान का जो लक्षण तथा उसके जो साधन बताये गये हैं उनका वर्णन कर देना भी आवश्यक प्रतीत होता है। भागवत पुराण में यह प्रसङ्ग निम्न प्रश्नोत्तर रूप में प्रस्तुत किया गया है।

उद्धव उवाच—

Scanned by CamScanner

यथात्वामरविन्दाक्ष ! यादृशं वा यदात्मकम् ।
ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे, ध्यानं मे वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

श्री भगवानुवाच--

सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम् ।
हस्तावुत्संग आधाय स्वनासाग्रं कृतेक्षणः ॥२॥

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूर कुम्भक रेचकैः ।
विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥

ह्यविच्छिन्नम् "ओंकारं" घण्टानादंविसोर्णवत् ।
प्राणेनोदोर्य तत्राथ पुनः संवेशमेत् स्वरम् ॥ ४ ॥

एवं 'प्रणव' संयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत् ॥ ५ ॥

भागवत पुराण—स्कन्द—अध्याय ११-१४-३१-३५ श्लोक तक ।

उद्धव ने पूछा—

कमलनयन । आप (कृपा करके) यह बतलाइये मुमुक्षु पुरुप आपका किस रूप से किस प्रकार और किस भाव से ध्यान करें ॥१॥

श्री भगवान ने कहा—जो न तो बहुत ऊँचा हो और न बहुत नीचा हो । अर्थात् समान आसन पर शरीर को सीधा रखकर आराम से बैठ जाये, हाथों को अपनी गोदी में रख लें और दृष्टि अपनी नासिका के अग्र भाग पर जमावें ॥ २ ॥

इसके बाद पूरक कुम्भक और रेचक इन प्राणायामों के द्वारा नाड़ियों

Scanned by CamScanner

का शोधन करें। प्राणायाम का अभ्यास धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए और इसके साथ-साथ इन्द्रियों को जीतने का अभ्यास करना चाहिए ॥ ३ ॥

हृदय में कमलनालगत पतले सूत के समान ओंकार का चिन्तन करें, प्राण के द्वारा उसे ऊपर ले जाये और उसमें घण्टानाद के समान स्वर स्थिर करें। उस स्वर का तांता न टूटने पावे ॥४॥

इस प्रकार ओंकार सहित प्राणायाम का अभ्यास करे ॥५॥

पाठक गण ! इस लेख में एक भी प्रमाण या पंक्ति किसी आर्य-समाजी विद्वान् के लेख से उद्धृत नहीं की गई और न मेरा ही इसमें कुछ अपना भाग है। यह सारा लेख उन आचार्यों के लेखों का संकलन मात्र है, जिन्हें पौराणिक जगत् प्रामाणिक और मान्य आचार्यों के रूप में मानता है। अतः आशा है, कि पौराणिक विद्वान् इस लेख पर गम्भीरता से पक्षपात त्याग कर विचार करेंगे। आर्य समाज के उपदेशक विद्वानों के लिये भी यह लेख एतद् विषयक प्रमाणों के एकत्र संकलन के रूप में शास्त्रार्थ तथा शङ्का समाधान आदि के अवसरों पर अत्यन्त उपयोगी हो सकता है।

समाप्त

Scanned by CamScanner

आर्यसमाज के नियम

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थविद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदिमूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर; सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिये।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

Scanned by CamScanner

॥ ओ३म् ॥

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

यजु० अ० ४० मं० ८।

(ईश्वर की स्तुति) वह परमात्मा सबमें व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान्, जो शुद्ध सर्वज्ञ, सबका अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान सनातन, स्वयसिद्ध परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से तथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है यह "सगुण स्तुति" अर्थात् जिस-जिस गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करना वह सगुण, (अकाय) अर्थात् वह कभी शरीर धारण वा जन्म नहीं लेता, जिसमें छिद्र नहीं होता, नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करता, जिसमें क्लेश दुःख अज्ञान कभी नहीं होता इत्यादि जिस-जिस राग द्वेषादि गुण से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है वह 'निर्गुण स्तुति' है। इसका फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे गुण कर्म स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुण कीर्त्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है।

Scanned by CamScanner